International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

भारतीय ज्ञान परंपरा और संत रैदास

डॉ प्रशांत गौरव

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, गोस्सनर कॉलेज, रांची
ईमेल - pgaurav99@gmail.com

शोध-सारांश

भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा के पुनर्जागरण में भक्ति काल अथवा भक्ति आंदोलन की महत्पूर्ण भूमिका रही। इस कालखंड के प्रसिद्ध संतो में संत रैदास का नाम आदर से लिया जाता है। ये कबीर परंपरा के संत कवि और रामानंद के शिष्य थे, जिन्होंने जीवनानुभव को अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। अन्य संत कवियों की भांति रैदास ने गुरुकृपा, सत्संग, नाम, सुमिरन, परिवेश के अवलोकन और अंतः प्रेरणा से ही ज्ञान प्राप्त किया था।

रैदास भारतीय संत परंपरा के महत्वपूर्ण कड़ी थे। उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि दलित जाति में जन्म लेकर भी उन्होंने अपने दलित होने का उदघोष बार-बार किया "कह रैदास खलास चमारा"। उनका चिंतन और काव्य ऐसे सामाजिक परिदृश्य का दर्पण था, जिसमें मध्यकालीन जीवन दर्शन और सामाजिक चेतना की सारी दिशाएं एक साथ लक्षित होती है। रैदास ने कबीर की तरह आडंबर की तीखी भाषा में खंडन तो नही किया लेकिन कर्मकांड का निषेध तो अवश्य किया। उन्होंने भक्ति के निर्गुण रूप को अपनाया लेकिन उसकी अभिव्यक्ति के लिए सगुण भक्ति की तन्मयता को अपने लिए आधार बनाया। यह सगुण भक्ति रैदास की वाणी में प्रेम के आवेग के रूप में अभिव्यक्त हुई है। रैदास की केंद्रीय विशेषता उनकी सामाजिक चेतना में सांस्कृतिक चेतना का विस्तार है।

रैदास की कर्मभूमि काशी थी जो संतों विद्वानों के साथ ही कर्मकांडी ब्राह्मणवादी, पंडितों का केंद्र थी। उनके व्यक्तित्व की यह विलक्षणता ही थी कि वे एक सामान्य चर्मकार परिवार में जन्म लेकर तथा सामान्य गृहस्थ जीवन बिताते हुए महान व्यक्तिगत मानवीय गुणों से मंडित रहे। रैदास की कविताओं को रैदास की वाणी के नाम से समुचित आदर मिला। उनकी वाणी की महत्ता इस बात से आंकी जा सकती है कि सिक्ख धर्म के पांचवे गुरु अर्जुन देव जी ने सन 1604 में आदि ग्रंथ को

संपादित करते हुए रैदास के 40 पद और एक दोहा को 16 रागों में संग्रहित किया है। उनके पद ज्ञान परंपरा की निर्गुणधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

रैदास ने दलित समाज के प्रतिनिधि के रूप में अपनी भक्ति का उपस्थापन किया है। उनकी वाणी में कहीं भी अपने दलित होने का संकोच नहीं है। रैदास ने न केवल पूजा की औपचारिकता का विरोध किया है बल्कि अपने दलित समाज को भी पूजा का अधिकारी सिद्ध किया है।

संत रैदास ने देह, मन, बुद्धि, हृदय की सांसारिक वृतियों और भाव दशाओं पर तटस्थता की स्थिति पा ली थी और आत्मा के सत्य का अनुभव कर लिया था। उनका ब्रह्म सगुण - निर्गुण, साकार - निराकार की चेतना से अतीत केवल अनुभूति गम्य था। उनकी कथनी और करनी में जो साम्यता की स्थिति है वह भारतीय ज्ञान परंपरा को उनकी अमूल्य देन है।

कूट शब्द - संस्कृति, पुनर्जागरण, जीवनानुभव, सुमिरन, कर्मकांड

प्रस्तावना

हिंदी संत साहित्य की परंपरा समृद्ध रही हैं और इस परंपरा की बेल को सींचने में संत-कवि रैदास की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। इस परंपरा का वर्णन करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी संत-कवियों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, ‘‘हिंदी-संत-साहित्य के निर्माताओं में कुछ ऐसी उत्कृष्ट और अलौकिक विभूतियों का आविर्भाव हुआ है जिनके जोड़ के महापुरुषों का अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध करना कठिन है। आदर्श और व्यवहार का सामंजस्य संतमत की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण विशेषता है। इसी कारण हमारे सभी संतों ने कथनी एवं करनी की पूर्ण एकरूपता पर विशेष जोर दिया है।.......हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि न संतों का जीवन भी वैसा ही उच्च और उज्जवल अवश्य रहा होगा, जैसा कि उनकी रचनाओं में व्यक्त विचारों द्वारा लक्षित होता है।’’1

भारतीय ज्ञान परंपरा में संत साहित्य का महत्व इसलिए भी रहा है कि प्रतिदिन अनुभव में आने वाली वस्तुओं और व्यवहारों की वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट हो उनकी वास्तविकता को अनुयायियों और भक्तों के समक्ष यथास्वरूप रखना उनके काव्य का उद्देश्य रहा। यहां मनोरंजन से ज्यादा ज्ञानवर्द्धन तथा सन्मार्ग की ओर ले जाने का प्रयास ज्यादा लक्षित होता है। समुचित आवश्यक और उपलब्ध साधनों द्वारा सन्मार्ग से पूर्ण परिचित कराना और इसके अनुसार ही अपना जीवन संबंधी

व्यावहारिक दृष्टिकोण स्थिर करना संत-कवियों का उद्देश्य रहा है। वस्तुस्थिति की सच्ची परख होते ही इन्हें एकमात्र नित्य और शाश्वत सत्य की अनुभूति हुई और इस अनुभूति को ज्यों का त्यों इन्होंने अपने काव्य में प्रकट किया। संतों ने अपनी रचनाओं के अंतर्गत आनेवाली आध्यात्मिक, धार्मिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रायः सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान उसी निश्चित किये गये दृष्टिकोण के अनुसार करने की चेष्टा की है। उक्त नित्य सत्य के साथ स्वभावतः एकात्मकता स्थापित करने के कारण इनके आदर्शों का मानक भी अत्यंत उच्च एवं व्यापक निर्धारित हुआ है। इसीलिए इनमें पराजय अथवा पलायन की अपेक्षा विद्रोह तथा संघर्ष का स्वर ज्यादा मुखरित है।

इनके काव्य में सभी प्राणी आत्मीयों की भांति जान पड़ने लगे हैं। साथ सभी धर्मों के प्रचलित आधारभूत नियम इनके व्यक्त सिद्धांतों की ही पुष्टि करते जान पड़ते हैं। समकालीन लगभग सभी संतों ने अपनी रचनाओं का विषय केवल उन्हीं बातों को बनाया जिनका संबंध या तो आध्यात्मिक अनुभूति से अथवा उस दृष्टि से दीख पड़ने वाले उन कतिपय सामाजिक दोषों से था जो उनके समय में बहुधा प्रचलित थे। उन्होंने केवल इसलिए रचनाएं प्रस्तुत की कि बिना उनके न तो वे अपनी अनुभूतियों को व्यक्त कर सकते थे, न आत्मोद्धार अथवा लोक-कल्याण का उपदेश ही दे सकते थे।

संत रैदास का पूर्ण विश्वास संसार को चलाने वाली उस महाशक्ति में था जिसे ब्रह्म कहा जाता है। इस संसार में जो कुछ भी है वह ब्रह्ममय है। रैदास संसार को नाशवान, क्षणभंगुर और मिथ्या मानते थे। नाम-स्मरण और ईश्वर भक्ति, कर्मफल और पुर्नजन्म में उनकी पूर्ण निष्ठा थी। उनका मानना था कि मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मत्सर आदि का त्याग करके दया, करूणा, परोपकार व विनम्रता का आचरण कर हरि स्मरण करते रहना चाहिए। तटस्थ व निश्छल भाव से हरि का स्मरण ही मुक्ति का मार्ग है तथा इसी में मानव जीवन की सार्थकता है। उनके काव्य का लक्ष्य भी यही था। संत रैदास में सभी धर्मों का, मतों, विचारधाराओं के तत्वों का प्रभाव था। वे न केवल स्वयं ही मानवता के ऊंचे आदर्शों का पालन करते थे अपितु हर व्यक्ति से यही अपेक्षा भी रखते थे कि वह भी उन आदर्शों का अनुगमन करे। सारतः उनका जीवन मानवतावादी था।

उनकी ऐसी धारणा थी कि यदि मनुष्य करोड़ों प्रकार के पाप करके भी हरिस्मरण कर ले तो उका सहज ही में कल्याण हो जाता है। लेकिन प्रभु का स्मरण या नाम स्मरण तभी संभव है जब ईश्वर के प्रति उसके मन में निष्ठा और प्रेम हो। रैदास का मानना था कि नाम-स्मरण में ही आदर्श जीवन

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

विद्यमान है। हमारे ऋषि-मुनियों ने भी मानव कल्याण की धारणा को व्यक्त करते हुए ईश्वर से यह प्रार्थना की है कि-

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तुः मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।" 2

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरोगी हो, सभी का कल्याण हो, कोई भी दुखी न रहे। इतना ही नहीं वसुधैव कुटुम्बकम् का उद्घोष कर समूची धरती की कल्पना एक परिवार के रूप में की है।

विषय विश्लेषण : -

रैदास ने दलित समाज के प्रतिनिधि के रूप में अपनी भक्ति का उपस्थापन किया है। उनकी वाणी में कहीं भी अपने दलित होने का संकोच नहीं है। तभी वे अनुभव करते हैं की उनका मुक्तिदाता अपनी शरण में आने वाले को नीच से ऊंच बना देता है। वह प्रभु जाति, धर्म, कर्म और वर्ण के भेद को नहीं मानता। इसलिए उसके शरण में आए बिना किसी के लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है। रैदास ने सभी जीवों को परमात्मा का अंश स्वीकार किया है। "सोई मुकुंद हमरा पित माता" कहकर उसके साथ अपना अनन्य संबंध स्थापित किया है। वही ईश्वर प्रत्येक जीव का प्राण है और उसे प्राप्त करने के लिए सत्संग के बिना दूसरा कोई रास्ता नहीं। रैदास ने लिखा है -

"साधु संगति बिनु भऊ नहीं ऊपजै।
भाव बिनु भगति होई न तेरी ।।" 3

रैदास ने न केवल पूजा की औपचारिकता का विरोध किया है बल्कि अपने दलित समाज को भी पूजा का अधिकारी सिद्ध किया है। जैसे भगवान पवित्र है वैसे ही पवित्र हृदय की भक्ति को वह बिना किसी औपचारिकता के भी स्वीकार कर लेता है। अतः जन समाज को इस आडंबर में भरमाने की आवश्यकता नहीं और इस अंतः करण की पवित्रता के लिए न उसे अड़सठ तीर्थों में नहाने की आवश्यकता नहीं है और न द्वादश शिला की पूजा करने की। क्योंकि ऐसा करके भी यदि वह साधु की निंदा करता रहेगा, तो नरकगामी होगा। इतना ही नहीं, चाहे वह सम्पूर्ण स्मृतियों का स्मरण करता रहे और चाहे यश प्राप्ति के अन्य औपचारिक कार्य करता रहे। इन सबसे भी उसका अंतर्मन पवित्र न होगा, जब तक कि वह निंदा आदि दुर्गुणों को त्यागकर वैक्तिक आचरणगत पवित्रता को

नहीं अपनाता और ऐसा निंदक एक मात्र नरक को ही प्राप्त कर सकेगा, क्योंकि वह पाप की कालिमा से पुता हुआ है -

"जे ओहु अड़सठि तीरथ नहावै ।
जे ओहु दुआदस सिला पुजावै ।
निंदक सोधि साधि बीचारिआ ।
कहु रविदास पापी नरकि सिधारिआ ।।" 4

संत रैदास के अनुसार सभी मनुष्य एक ही मिट्टी के बने हैं तथा बनानेवाला भी एक ही है अर्थात् परमात्मा। वही परमात्मा या ईश्वर सबके हृदय में रहता है तथा सबको समान दृष्टि से देखता है। फिर क्या ब्राह्मण और क्या शूद्र। भेद तो मूढ़मति के लक्षण हैं। यह जातिगत भेदभाव बड़ा घातक है। वस्तुतः सभी एक ही बूंद से बने हैं,

"सभ मकि एकु रामहु जोति सभनह एकउ सिरजनहारा।
रैदास राम रमाहि सभन मंहि ब्राह्मण हुई क चमारा।।
एकै माटी के सभ भांडे सबका एकौ सिरजनहारा।
रैदास व्यापै एकौ घट भीतर सभ को एकै घड़ै कुम्हारा।।
रैदास उपजहे सभ एक बूंद ते का ब्राह्मण का सूद।
मूरख जन न जानइ सभ महं राम मजूद।।" 5

वास्तव में संत रैदास का मुख्य जीवन-दर्शन मानवीय एकता में विश्वास का रहा है। उनका मत था कि यदि ब्राह्मण गुणहीन हो तो उसका कभी भी सम्मान नहीं मिलना चाहिए। इसके विपरीत यदि चाण्डाल गुणवान हो तो उसकी भी वंदना होनी चाहिए।

कहते हैं कि संत रविदास एक दिन नित्य की भांति धर्मोपदेश कर रहे थे। संयोगवश उस दिन कट्टरपंथियों के विरोध ने कुछ उग्र रूप धारण कर लिया। वे रविदासजी को यज्ञोपवीत रहित तथा अब्राह्मण कहकर उन्हें धर्मोपदेश का अनधिकारी बताते हुए प्रवचन के मध्य बारम्बार टोकते रहे। कहा जाता है कि रविदास सहसा व्यासगद्दी से उठ खड़े हुए और उन्होंने अपना वक्ष चीर यज्ञोपवीत दिखाकर अपने ब्राह्मणत्व का परिचय दिया। उस समय दिव्य यज्ञोपवीत की करोड़ों सूर्य जैसी ज्योति चारों ओर चमक उठीं। दर्शकगण चकाचौंध रह गए। उस दिव्य ज्योति के विलीन होने के

साथ ही संत रविदासजी सशरीर ब्रह्मलीन होने का समाचार लेकर भक्तजन जब लोना देवी के पास कुटिया में पहुंचे तो उन्होंने देखा कि वे भी सशरीर अंतर्धान हो चुकी हैं। ख्यात है कि मीरा उनकी शिष्या थीं। अपने गुरू के पवित्र चरण-चिन्ह की चिरस्थायी स्मृति बनाये रखने के लिए मीराबाई ने उनके ऊपर छतरी बनवा दी। संत रैदास का स्मारक 'रविदासजी की छतरी' तथा 'रविदासजी के चरण चिह्न चित्तौड़ में उनके श्रद्धालु भक्तों के लिए आज भी तीर्थ बने हुए हैं।

संत रैदास ने स्वयं अपना कोई पंथ स्थापित नहीं किया था। सामान्यतः कोई भी सिद्ध संत इस पंथवाद का पक्षपाती नहीं होता है। रैदास भी नहीं थे। किंतु उनके मतवाद की परंपरा चलती रही। इस परंपरा में अनेक संत-कवि हुए हैं। इनके अनुयायियों की संख्या लाखों में है और प्रायः भारत के प्रत्येक भाग में पाये जाते हैं। ये महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, उत्तरप्रदेश, दिल्ली आदि प्रदेशों में बिखरे हुए हैं। इनके अनुयायी अपने को रविदासी, रैदाइसी, रामदासी, घुसिया, चमार, चर्मकार, रैगर, खटीक, जटिया, जाटव आदि अनेक नामों से पुकारते हैं।

संत रैदास की वाणी की अपनी अनेक विशेषताएं हैं। उन्हें परवर्ती संतों, भक्तों, विद्वानों तथा आलोचकों ने भी स्वीकार किया है और उनकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। रैदास एक अत्यंत विनीत, राग-द्वेष रहित, खंडन-मंडन प्रवृति रहित एक उच्च कोटि के संत कवि थे। अतएव उनकी वाणी भी उन्हीं की भांति सरस, सरल एवं सुबोध किंतु उदात्त विचारों तथा भक्ति-भावना से पूर्ण है। उसमें कहीं किसी प्रकार की भी कटु भावना एवं उत्तेजना नहीं पायी जाती। संत नाभादास ने रैदास की वाणी को 'संदेह ग्रंथि खंडन निपुन' के साथ-साथ 'बिमल बानि' कहकर सराहा है। उन्होंने अपने भक्तमाल में रैदास के संबंध में जो प्रशस्ति गाई है, वह उनकी वाणीगत विशेषताओं तथा व्यक्तित्व का पूर्ण एवं सत्य-सत्य उद्घाटन करती है,

''संदेह ग्रंथि खंडन-निपुन बानि बिमल रविदास की।
सदाचार स्रुति सास्त्र बचन अविरूद्ध उचार्यो।
नीर छीर बिबरन परम हंसनि उर धारयो।।
भगवत कृपा परम गति इहिं तनु पाई।
राज सिंहासन बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई।।
बर्नास्रम अभिमान तजि पद रज बंदहिं जासु की।
संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि बिमल रविदास की।।" 6

अर्थात रैदास की वाणी संदेह को सुलझाने में सत्-असत् का विवेक कराने में परम सहायक है। वह अत्यंत विमल है, दोषों से रहित है। रैदास ने जिस आचार पद्धति का अनुसरण किया और जिन विचारों का प्रचार किया, जो उपदेश दिये वे वेद-शास्त्रों के अनुकूल थे। वे सब सर्वथा वेदविहित थे। उन विचारों तथा उपदेशों को नीर-क्षीर विवके वाले, भले-बुरे, पाप-पुण्य के ज्ञान की सामर्थ्य रखनेवाले संत महात्मा लोग भी स्वीकर एवं पालन करते थे। रैदास ने भगवत् कृपा से जीवितावस्था में ही परम गति प्राप्त कर ली। वह जीवनमुक्त थे। उन्होंने इस उच्चतम पद को प्राप्त करके अपने कुल की उच्चता का ज्ञान संसार को कराया। बड़े-बड़े संत महात्मा तथा विद्वान अपने वर्ण और आश्रम का अभिमान त्याग कर उनकी चरण वंदना करते थे। रैदास की वाणी शंकाओं को दूर करने वाली है और सब प्रकार के दोषों से मुक्त है।

संत रैदास की भक्ति और काव्य के संबंध को रेखांकित करते हुए धर्मपाल मैनी लिखते हैं, "रैदास की विचारधारा में मूल स्वर ब्रहम का है, तो उसका स्वर एक छोर पर उनकी अपनी हीनता से जुड़ा हुआ है, जिसके केंद्र में उनकी जाति है। वास्तव में रैदास की मूल समस्या ब्रहम के साक्षात्कार की न थी, उनकी मूल समस्या तो अपनी हीनताओं से मुक्ति पाकर आत्म-उन्नयन की थी। इसलिए वे निरंतर ब्रहम की चर्चा के साथ अपनी जातिगत हीनता को जोड़ देते हैं। रैदास की दृष्टि में भगवद-भक्ति ही ऐसा एक मात्र साधन था, जिसके आधार पर वे अपने को समुन्नत अनुभव कर सकते थे। इसलिए रैदास आत्म-उद्धार के लिए व्याकुल हैं। अपने प्रारंभिक पदों में रैदास ईश्वर के सम्मुख आत्म-हीनता को स्वीकार करते हुए विनत होते हैं, इसके बाद वे ब्रहम की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, उदारता, दीन-दलितों के प्रति सदाशयता का वर्णन करते हैं तथा अंत में आकर वे इस बात से आत्म-उन्नयन को अनुभव करते हैं कि वेदज्ञ विप्र भी उन्हें दंडवत करते हैं। इस व्यक्तिगत समस्या के सहारे ही उनकी आध्यात्मिक विचारधारा अंकुरित और पल्लवित हुई है। इस प्रकार जाने-अनजाने वे उस सामाजिक समस्या पर भी विचार कर गये हैं, जिसने जाति और वर्ण के नाम पर विशाल जनसंख्या का सामाजिक और मानसिक शोषण किया है। सामाजिक दुर्व्यवहार और राजनैतिक अव्यवस्था के संत्रास को सर्वाधिक उस समय की जातियां सह रही थीं। इसलिए रैदास भगवान की भक्ति की ओर उन्मुख हुए हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में भगवान नीचों को ऊंचा बनानेवाला है, अतएव वे रैदास की भी विपत्ति को हरने में समर्थ है। रैदास की भक्ति इसी साध्य को पाने का साधन है। साध्य के प्रति उनकी निष्ठा भक्ति की गंभीरता और तल्लीनता से लक्षित होती है।" 7

संत रैदास को धर्म से नहीं अपितु मानवता से मतलब था। इन्होंने अपने पदों के माध्यम से समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव को दूर कर सामाजिक एकता पर बल दिया है और मानवतावादी मूल्यों की नींव रखी-

''रैदास जन्म के कारणे, होत न कोई नीच।
नर को नीच कर डारि है, ओहे करम की नीच।।''

उनका मानना था कि कोई भी व्यक्ति अपने जन्म से नहीं कर्म से नीच होता है। संत रैदास ने अपने कविताओं के लिए जनसाधारण की भाषा चुनी। जिसमें विभिन्न क्षेत्रों की विविध भाषाएं जैसे-ब्रजभाषा, अवधि, राजस्थानी, उर्दू, फारसी, पंजाबी एवं भोजपुरी आदि के शब्द तथा वाक्य संरचना पायी जाती हैं।

स्वामी रामानंद जो रैदास के गुरू थे, वैष्णव भक्ति धारा के एक महान संत थे। कबीर उनके समकालीन थे। दोनों के कथ्य में भी काफी समानता पायी जाती है। रैदास मन की शुद्धता को सर्वाधिक महत्व देते थे। उनकी एक प्रसिद्ध पंक्ति है-

''मन चंगा तो कठौती में गंगा।।''

अपने को निम्नतर बता कर भी उन्हें पता है कि उस उच्चतम ने अपनी शरण में आने पर हमें ठुकराया नहीं। हम अवगुणों की खान हैं तो प्रभु उतने ही बड़े उपकारी। सत्संगति के कारण हमें भी प्रभु-चंदन ने अपनी सुगंध प्रदान की। इस सब का आधार रैदास प्रेमपूर्ण सेवाभाव है-

''तुम चंदन हम इरंड बापुरे संगी तुमारे बासा।
नीच रुख ते ऊंच भए हैं गंध सुगंध निवासा।।'' 8

रैदास के जीवन की सारी साधना मूलतः सेवा की ही साधना हैं। उनका अहम कभी उद्वेलित नहीं हुआ। उनके व्यक्तित्व में निखार आता गया और वह प्रखर होता गया। विनम्रता उनका गहना बना रहा और अपने आप को प्रभु को समर्पित करने में उन्हें देर न लगी। इसलिए वह उनके, ''प्रेम की जेवरी'' में बंधा हुआ उसका अनुकरण करता चलता है, क्योंकि रैदास ने अनुभव कर लिया था कि बहुत जन्मों से बिछुड़ने के बाद अब यह जन्म उन्हें पूर्णतः प्रभु में लगा देना है-

''बहुत जनम बिछुरे माधउ इहु जनमु तुम्हारे लेखे'' 9

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

भारतीय ज्ञान परंपरा में संत रैदास की स्थिति का मूल्यांकन करते हुए योगेन्द्र सिंह लिखते हैं, ‘‘रैदास ने तत्कालीन युग में प्रचलित संपूर्ण साधना पद्धितियों एवं विचारों का समन्वय करते हुए नवयुग के अनुरूप एक ऐसी सर्वांगीण पद्धति दी थी जिसमें प्रत्येक विचारधारा का लाभकारी स्वरूप समाविष्ट था, उनका हानिकर या अधिक वैधी रूप तथा बाह्याचरण पूर्णरूपेण बहिष्कृत कर दिया गया था। तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में रैदास की विचारधारा ने सामाजिक पुनर्व्यवस्थापन के उस युग में एक मात्र अस्त्र धार्मिक चिंतन को समन्वित एवं सरलतम रूप में प्रस्तुत करने के कार्य को बहुत आगे बढ़ाया। उनके विचारों में उतनी ही क्रांति थी जितनी तत्कालीन किसी भी अन्य विचारक के विचारों में थी; या हो सकती है, वरन सामाजिक अन्याय के विरूद्ध उनकी अंतर्पीड़ा अनेक स्थलों पर फूट-फूट पड़ी है; किंतु उनकी अभिव्यक्ति शैली में एक संत का संतोष एवं भक्त का धैर्य था, न कि एक राजनीतिक नेता के जोश और फटकार की भाषा। उनकी विचारधारा की युगानुकूलता एवं उसको ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करने की सुंदर शैली का ही परिणाम हम देखते हैं कि लगभग सभी संतों की भांति अंत्यज वर्ग में जन्म लेकर, जीवन में अनेक बार तथाकथित पंडितों के द्वारा अपमानित होने के बाद भी रैदास को अपने समय के किसी भी धार्मिक नेता से अधिक सम्मान मिल सका।’’ 10

निष्कर्ष : -

सारतः रैदास ने स्थापित किया कि जिस प्रकार दूसरी जाति या मत वाले के हृदय हैं, उसी प्रकार हमारे भी हैं, जिस प्रकार दूसरे के हृदय में प्रेम और भक्ति की तरंगे उठती हैं, उसी प्रकार हमारे हृदय में भी। माता का जो हृदय दूसरों के यहां है वही हमारे यहां भी है। जिन बातों से दूसरों को सुख-दुख होता है, उन्हीं बातों से हमें भी होता है। उन्होंने न केवल भिन्न प्रतीत होते हुए परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया वरन प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य भी सामने रखा।

संत रैदास सहित भक्ति काल के तमाम सुधारवादी संतो के काव्य की कुछ सीमाएं भी हैं। कुछ मायनों में इनकी आलोचनाएं भी हुई हैं। इन सीमाओं को रेखांकित करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, ‘‘अपनी तमाम सुधारवादिता के बावजूद भक्ति के आचार्यों ने चले आ रहे दार्शनिक विचारों और शास्त्रसम्मत सामाजिक विधान को ही आगे बढ़ाया। मोक्ष को परम पुरूषार्थ मानते हुए वर्ण-धर्म के अनुरूप समाज को उसे पाने के अलग-अलग रास्ते सुझाए। लोक से अधिक परलोक की चिंता पर जोर दिया। मनुष्य जो कुछ सुख-दुख समाज में भोगता है, उसके स्रोत और उसके कारण इस समाज तथा व्यवस्था में ही हैं, इस सत्य को ढंकते हुए कर्मफल और ईश्वरीय विधान कह कर उन्हें अदृश्य

की मर्जी, नियति के हवाले कर दिया गया। ईश्वर मनुष्य को दुख सहने की शक्ति भले दे, उसके दुख दूर नहीं कर सकता। इस सच्चाई पर भी परदा डालते हुए ईश्वर-भक्ति को सारे सांसारिक दुखों से मुक्ति पाने का माध्यम बताया गया।" 11

उक्त सीमाएं मध्यकाल के सभी संत-कवियों में लगभग समान रूप से पायी जाती हैं। इन सबके बावजूद भारतीय ज्ञान परंपरा में इनका योगदान अक्षुण्ण है। वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को व्यावहारिक ज्ञान की मानी जाय और मानव-मानव को निकट लाने का प्रयत्न किया जाये तो वह मानवधर्म और कुछ नहीं, संत रैदास तथा समकालीन व सहयोगी संतो की सामान्य मान्यताओं से उद्भूत निर्गुण चेतना का ही विकसित और परिष्कृत रूप है।

संदर्भ ग्रंथ

1. संत साहित्य की परख, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, पृ० सं०-104-105
2. वृहदारण्यक उपनिषद, गीताप्रेस, गोरखपुर
3. रैदास, धर्मपाल मैनी, साहित्य अकादमी, पृ० सं०-33
4. वही, पृ० सं०-40
5. रैदास ग्रंथावली, डॉ जगदीश शरण, साहित्य संस्थान, पृ० सं०-61
6. श्री भक्तमाल, नाभादास, गीताप्रेस गोरखपुर, छप्पय-59
7. रैदास, धर्मपाल मैनी, साहित्य अकादमी, पृ० सं०-49- 50
8. वही, पृ० सं०-33
9. वही, पृ० सं०-34
10. संत रैदास, योगेंद्र सिंह, लोकभारती प्रकाशन, पृ० सं०-115
11. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिव कुमार मिश्र, लोक भारती प्रकाशन, पृ० सं०-60